मूर्तिपूजा का दर्शन
और महत्त्व
स्वामी शिवानन्द

मूर्तिपूजा का दर्शन और महत्त्व

"The Philosophy and Significance of Idol Worship'
का हिन्दी अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका
शिवानन्द राधिका अशोक

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर - २४९ १९२
जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखंड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dishq.org
प्रथम हिन्दी संस्करण- २००५

द्वितीय हिन्दी संस्करण -२००७
तृतीय हिन्दी संस्करण- २०१५

(१,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HS 9

PRICE : ₹30/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखंड, पिन २४९ -१९२ में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

प्रकाशकीय वक्तव्य

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने मूर्तिपूजा के दर्शन और महत्त्व से आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को अवगत कराने के महान् प्रयोजन से "The Philosophy and Significance of Idol Worship' नामक इस ग्रन्थ की अँगरेजी भाषा में रचना की थी। इस पुस्तक में इसके मूल विषय 'मूर्तिपूजा का दर्शन

और महत्त्व' के साथ ही 'मन्दिर', 'प्रसाद की महिमा', 'हिन्दू प्रतीकों का दर्शन', 'शिवलिंग' तथा 'आस्था और मूर्तिपूजा' जैसे आध्यात्मिक विषयों के सारतत्त्व को भी पाठकों को हृदयंगम कराया गया है।

हम इसे अपना सौभाग्य समझते हैं कि हम अध्यात्म-पथ के साधकों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इस पुस्तक के सरल, भावपूर्ण और हृदयग्राही हिन्दी अनुवाद को प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि इस पुस्तक के स्वाध्याय से असंख्य पाठकों के जीवन में एक नये सुन्दर और भव्य अध्याय का शुभारम्भ होगा।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय सूची

प्रकाशकीय वक्तव्य.....3
मूर्तिपूजा.....4
उपासकना के लाभ.....4
सगुण उपासना और निर्गुण उपासना.....5
भक्तियोग में विभिन्न भाव.....6
पूजा और इष्टदेवता.....6
मूर्ति-नवीन आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए एक अवलम्बन.....8

हर कोई मूर्तिपूजक है........8
ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम........8
ईश्वर का प्रतीक........9
विराट् का सम्पूर्ण अंश........10
मूर्तिपूजा से भक्ति का विकास होता है।........10
नियमित पूजा मूर्ति में स्थित देवत्व को अनावृत्त करती है........11
मूर्ति चेतना का पुंज........11
जब मूर्तियाँ सजीव हो उठीं........11
वेदान्त और मूर्तिपूजा........12
वैधी भक्ति से परा भक्ति........13
हिन्दू दर्शन का महत्त्व........13
उपसंहार........14
मन्दिर........15
प्रसाद की महिमा........16
हिन्दू प्रतीकों का दर्शन........18
शिवलिंग........19
आस्था और मूर्तिपूजा........20

मूर्तिपूजा

भगवान् या परमात्मा के पास पहुँचने के लिए उपासक द्वारा किये जाने वाले प्रयास का एक भाग मूर्तिपूजा है। उपासना का अर्थ है—भगवान् के पास बैठना। शास्त्रों तथा गुरु द्वारा बताये अनुसार उपासना हेतु चुनी हुई मूर्ति या विषय-वस्तु के पास बैठ कर उसका ध्यान कर उसमें मन को तैलधारावत् लीन कर देना उपासना कहलाता है। इसमें वे सभी शारीरिक एवं मानसिक अनुभव व साधना सम्मिलित हैं जिनके द्वारा जिज्ञासु आध्यात्मिकता के क्षेत्र में स्थिर प्रगति करता है और अपने भीतर, अपने हृदय में देवत्व की उपस्थिति का अनुभव करता है।

उपासकना के लाभ

उपासना भक्त को भगवान् के पास बैठने और उनके साथ सम्पर्क करने में सहायता करती है। यह हृदय को शुद्ध करती है और मन को स्थिर करती है। यह मन को शुद्ध भाव या शुद्ध प्रेम से भर देती है। यह मनुष्य को धीरे-धीरे देवता में रूपान्तरित कर देती है। उपासना मन-तत्त्व को बदलती है, रज और तमस् को नष्ट कर मन को सत्त्व या

पवित्रता से भर देती है। यह वासनाओं, तृष्णाओं, अहंकार, कामुकता, घृणा, क्रोध आदि को नष्ट कर देती है। यह मन को अन्तर्मुखी करके अन्तर्मुख वृत्ति को प्रेरित करती है और साथ-ही-साथ भक्त को ईश्वर के सम्मुख लाती है। भक्त को जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिला कर उसे अमरत्व और मुक्ति प्रदान करती है।

मन जिसका भ्रमर की भाँति ध्यान करता है, वही बन जाता है। जैसा आप सोचते हैं, वैसा ही बन जाते हैं। यह एक अपरिवर्तनीय वैज्ञानिक नियम है। उपासना में एक रहस्यमय और अचिन्त्य शक्ति है जो ध्यान करने वाले और ध्येय को एक कर देती है।

आप गीता के ११ वें अध्याय के ५४ वें श्लोक में देखेंगे, भगवान् अर्जुन से कहते है -"हे परंतप ! मैं मूल रूप में इस प्रकार दिखायी देता, जाना जाता और प्रविष्ट होता हूँ।"

पतंजलि महर्षि ने राजयोग सूत्रों में कई स्थानों पर उपासना के महत्त्व पर बल दिया है। यहाँ तक कि राजयोगी के लिए भी उपासना आवश्यक है। उसका स्वयं के एक इष्टदेवता योगेश्वर कृष्ण या भगवान् शिव होते हैं। राज नियम या क्रियायोग का एक अंग भगवान् के प्रति आत्म-समर्पण है। महर्षि पतंजलि कहते हैं— " उपासना के द्वारा व्यक्ति समाधि में प्रवेश कर सकता है।"

वे सभी चीजें जो आध्यात्मिक उत्थान और धर्म की प्राप्ति में संवाहक हैं, उपासना उनमें से एक है। यह सभी लोगों के लिए लाभदायक तथा अपरिहार्य परिणाम भी प्रदान करती है। यह सरल भी है।

खाना, पीना, सोना, भय और मैथुन आदि पशुओं और मनुष्यों — दोनों में समान हैं; लेकिन जो मनुष्य को सच्चा मानव या देवता बनाती है, वह है उपासना। जो मनुष्य मात्र विषयी जीवन व्यतीत करता है, वह पशु ही है, चाहे उसने मनुष्य का रूप धारण कर रखा है।

सगुण उपासना और निर्गुण उपासना

उपासना दो प्रकार की होती है-प्रतीक उपासना और अहंग्रह उपासना । 'प्रतीक' अर्थात चिह्न, प्रतीक उपासना सगुण उपासना है। अहंग्रह उपासना निर्गुण उपासना या निराकार, निर्गुण अक्षर या परब्रह्म का ध्यान करना । मूर्तियों, शालग्राम, भगवान राम, भगवान कृष्ण, भगवान शिव, गायत्री देवी के चित्र का ध्यान प्रतीक उपासना है। विस्तृत नीला अंबर, सर्वव्यापक ईश्वर, सूर्य का सर्वव्यापी प्रकाश आदि ये सब भी निराकार ध्यान के प्रतीक हैं। सद्गुणी उपासना साकार पर ध्यान है। निर्गुण उपासना निराकार का ध्यान है।

भगवान् की लीलाओं का श्रवण, उनके नामों का गायन, भगवान् का निरन्तर स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पुष्प अर्पण, साष्टांग प्रणाम करना, प्रार्थना, मन्त्र जप, आत्म-समर्पण, भक्तों की सेवा, देश और मानव मात्र की नारायण भाव से सेवा आदि सगुण उपासना का निर्माण करती है।

ॐ का आत्म-भाव से उच्चारण करना, आत्म-भाव से देश और मानवता की सेवा, आत्म या ब्रह्म भाव से ॐ का मानसिक जप, 'नेति नेति' के सिद्धांत के द्वारा मिथ्या साधनों को **सोऽ हं** या **शिवोऽ हं** या महा वाक्य जैसे 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्वमसि' पर ध्यान करना। -ये अहंग्रह उपासना या निर्गुण उपासना के अंतर्गत आते हैं।

सगुण उपासना भक्तियोग है। निर्गुण उपासना ज्ञानयोग है। सगुण या निर्गुण ब्रह्म उपासक एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं; लेकिन बाद वाला मार्ग अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इसमें जिज्ञासु को अपनी आध्यात्मिक साधना के प्रारम्भ से ही शरीर के प्रति आसक्ति (देहाभिमान) को त्यागना पड़ता है। अक्षर या अविनाशी उनके लिए अत्यन्त कठिन है जो

अपने शरीर में आसक्त रहते हैं। और मन को निराकार निर्गुण ब्रह्म पर केन्द्रित करना अत्यन्त कठिन है। अक्षर या निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने के लिए अत्यन्त एकाग्र और सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है।

भक्तियोग में विभिन्न भाव

भक्तियोग ज्ञानयोग से अधिक सरल है। भक्तियोग में भक्त ईश्वर के साथ अत्यन्त मधुर और निकट सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वह छहों भावों में से किसी एक का अपने स्वभाव, रुचि और क्षमता के अनुसार विकास करता है।

भक्तों के भगवान् के प्रति छह भाव होते हैं; ये हैं—– शान्त भाव, दास्य भाव, सख्य भाव, वात्सल्य भाव, कान्त भाव और माधुर्य भाव। ये भाव प्रकार और भावनाओं की प्रबलता में भिन्न-भिन्न होते हैं । ध्रुव और प्रह्लाद का भगवान् के प्रति माता-पिता का भाव था। यह शान्त भाव कहलाता है। दास्य भाव में भक्त एक दास की भाँति व्यवहार करता है। भगवान् उसके स्वामी होते हैं। हनुमान् जी भगवान् के आदर्श सेवक थे। सख्य भाव में एकत्व का भाव होता है। अर्जुन में यह भाव था । वात्सल्य भाव में भक्त ईश्वर को अपने बच्चे की तरह देखता है। यशोदा का श्रीकृष्ण के प्रति और कौशल्या का श्री राम के प्रति यही भाव था। कान्त भाव में वही भाव जो पत्नी का अपने पति के प्रति होता है। सीता और रुक्मिणी का भाव कान्त भाव था। माधुर्य भाव में प्रेम की चरम सीमा होती है। इसमें प्रेमी और प्रिय प्रेम की प्रबलता से एक हो जाते हैं। राधा और मीरा का प्रेम ऐसा था। यह भाव भक्ति का शिखर है। यह भगवान् के साथ एक होना या उनमें लीन हो जाना है। भक्त भगवान् में अत्यधिक श्रद्धा रखता और निरन्तर प्रभु का ही स्मरण करता है। वह उनके नाम का कीर्तन करता है, उनकी महिमा का गान करता है। उनके नाम तथा मन्त्र का जप करता है। वह प्रार्थना करता है, प्रणाम करता है। वह भगवान् की लीलाएँ सुनता है। वह लगन से तथा पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण करता है। वह भगवान् से सम्पर्क कर एक हो जाता है और जाता है। प्रभु में लीन हो जाता है।

माधुर्य भाव में भक्त और भगवान् के मध्य अन्तरंग सम्बन्ध होता है। माधुर्य या कान्त भाव में कामुकता बिलकुल भी नहीं होती। इसमें कामुकता की झलक भी नहीं होती। कामुक लोग इन दोनों भावों को समझ नहीं सकते; क्योंकि उनके मन वासना और निम्न विषयी भूख से भरे हुए हैं। सूफी सन्तों में भी प्रेमी और प्रिय का भाव, माधुर्य भाव होता है। जयदेव द्वारा लिखा गया ग्रन्थ गीत गोविन्द' ग्रन्थ माधुर्य भाव से पूर्ण है। योगी जिस प्रेम की भाषा का प्रयोग करते हैं, वह सांसारिक लोगों द्वारा नहीं समझी जा सकती। मात्र गोपियाँ, राधा, मीरा, तुकाराम, नारद, हाफिज़ ही इस भाषा को समझ सकते हैं।

पूजा और इष्टदेवता

परम्परागत उपासना हेतु एक सामान्य शब्द है पूजा और इसके अन्य समानार्थी शब्द हैं अर्चना, वन्दना, भजन आदि । हालांकि इनमें से कुछ इसके किसी-किसी रूप पर जोर देते हैं। पूजा का विषय इष्टदेवता होता है। इष्टदेवता का अर्थ है—– पूजक देवता के जिस विशेष रूप की पूजा करता है जैसे विष्णु भगवान् की पूजा वैष्णव लोग श्री राम या श्री कृष्ण के रूप में करते हैं, शैव लोग शिव के आठ रूपों की पूजा करते हैं और शाक्त देवी के भिन्न-भिन्न रूपों की पूजा करते हैं।

भक्त कभी-कभी अपनी पूजा के लिए अपने कुलदेवता या कुलदेवी का भी चुनाव कर लेते हैं। कभी-कभी देवता का चुनाव उसके गुरु करते हैं। कभी-कभी उसे स्वयं जो देवी या देवता अच्छे लगते हैं, वह उनका चुनाव कर लेता है। इस प्रकार इष्टदेवता बन जाते हैं।

बाह्य पूजा हेतु एक प्रतीक का प्रयोग किया जाता है जैसे वैष्णव लोग शालग्राम का और शैव लोग शिवलिंग का प्रयोग करते हैं, भगवान् का चित्र भी इस हेतु प्रयोग किया जाता है।

हालांकि सभी चीजें पूजा की ही वस्तु हैं; लेकिन इसका चुनाव व्यक्ति के स्वयं के ऊपर निर्भर करता है। जो व्यक्ति के मन पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है, वही अधिक उपयुक्त होता है।

प्रतिमा या प्रतीक से पूजक के मन में ईश्वर का विचार जागता है। शालग्राम से मन शीघ्र एकाग्र हो जाता है। हर व्यक्ति का प्रतीक, मूर्ति या चित्र के प्रति स्नेह होता है। मूर्ति (विग्रह), सूर्य, अग्नि, जल, गंगा, शालग्राम, शिवलिंग आदि सभी प्रतीक ईश्वर के प्रतीक हैं और ये जिज्ञासुओं को मन की एकाग्रता और हृदय की शुद्धता प्राप्त करने में सहायक होते हैं। ये पूजक की स्वयं की रुचि द्वारा ग्रहण किये जाते हैं और उसकी आस्था उस विशेष देवता में विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक रूप से इस सबका अर्थ यह है कि प्रतीकों या मूर्तियों के विशेष साधनों के द्वारा एक विशेष मनचाही गयी दिशा में श्रेष्ठ ढंग से कार्य कर सके।

बृहत् मनुष्य जाति में अधिकांश अपवित्र या निर्बल मन वाले हैं। इस लिए पूजा की विषय-वस्तु अवश्य ही पवित्र होनी चाहिए। ऐसी विषय-वस्तु जो वासना या मन को उत्तेजित करे, उससे बचना चाहिए; लेकिन एक उच्च साधक जो कि पवित्र मन वाला है और सर्वत्र हर वस्तु में दैवी उपस्थिति का अनुभव करता है, किसी भी प्रकार की वस्तु की पूजा कर सकता है।

पूजा में चित्र या मूर्ति जो दैवी रूप का बोध कराती हो, पूजा की वस्तु होती है। मूर्ति की पूजा की जाती है। चित्र, शिला या विग्रह या मूर्ति उस विशेष देवता के रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिसकी इसके सामने प्रार्थना की जाती है। शिवलिंग शिव को दर्शाता है। यह सर्वश्रेष्ठ निराकार ब्रह्म को दर्शाता है। श्रुति कहती है : **"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"**- ब्रह्म एक ही है, यहाँ कोई द्वैधता नहीं है। लिंग आँखों को आकर्षक और दिव्य लगता है। यह चित्त को एकाग्र करने में सहायता करता है। रावण ने शिवजी की आराधना की और शिवलिंग की पूजा द्वारा वरदान प्राप्त किये।

शालग्राम भगवान विष्णु की मूर्ति है। यह उनका प्रतीक है. भक्त की विशेष रुचि के अनुसार श्री राम, श्री कृष्ण, कार्तिकेय, गणेश, हनुमान, भगवान दत्तात्रेय, श्री सीता, पार्वती, दुर्गा माता, काली माता, सरस्वती माता आदि की मूर्तियाँ हैं।

विष्णु भगवान् और उनके अवतारों की मूर्तियाँ तथा शक्ति और शिव की मूर्तियाँ प्रचलित मूर्तियाँ हैं। वे मन्दिरों और घरों— दोनों में पूजी जाती हैं। तिरुपति, पण्ढरपुर, पलानी, कथीरगामा आदि मन्दिर में स्थित मूर्तियाँ शक्तिशाली देवता हैं। वे प्रत्यक्ष देवता हैं। वे अपने भक्तों को वरदान देते, उनके रोगों को दूर करते और दर्शन देते हैं। इन देवताओं के साथ आश्चर्यजनक लीलाएँ जुड़ी हुई हैं। हिन्दुत्व में कोई बहुदेववाद नहीं है। शिव, विष्णु, ब्रह्मा और शक्ति एक ही ईश्वर के विभिन्न रूप हैं।

भगवान् अपने भक्तों के सामने विभिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं। भक्त जिस रूप का चयन अपनी पूजा के लिए करता है, भगवान् वही रूप धारण कर लेते हैं। यदि आप भगवान् हरि के चतुर्भुज रूप की पूजा करते हैं, तो वे आपके सामने उसी रूप में आयेंगे। यदि आप उनकी उपासना शिवजी के रूप में करते हैं, तो वे आपको शिवजी के रूप में दर्शन देंगे। यदि आप उनकी पूजा माँ दुर्गा या काली के रूप में करेंगे, तो वे आपके पास दुर्गा या काली के रूप में आयेंगे। यदि आप उन्हें भगवान् राम, भगवान् कृष्ण या दत्तात्रेय के रूप में पूजेंगे, तो वे आपके पास राम, कृष्ण या दत्तात्रेय के रूप में आयेंगे। यदि आप उनकी पूजा ईसामसीह या अल्लाह के रूप में करेंगे, तो वे आपके पास ईसामसीह या अल्लाह के रूप में आयेंगे।

आप भगवान् शिव या भगवान् हरि, भगवान् गणेश या सुब्रह्मण्यम या दत्तात्रेय भगवान् या किसी भी अवतार, राम, कृष्ण, सरस्वती या लक्ष्मी, गायत्री या काली, दुर्गा या चण्डी की पूजा कर सकते हैं। सभी एक ही ईश्वर के रूप हैं। चाहे किसी भी नाम या रूप में हो, यह ईश्वर ही है जिसकी पूजा की जा रही है। पूजा उस रूप में स्थित अन्तर्यामी ईश्वर

के पास जाती है। यह सोचना कि एक रूप दूसरे से श्रेष्ठ है, अज्ञानता है। सभी रूप एक और एक-जैसे हैं। शिव, विष्णु, गायत्री, राम, कृष्ण, देवी, ब्रह्मा—– सब एक हैं। सभी एक ही ईश्वर की पूजा कर रहे हैं। पूजकों में भिन्नता होने के कारण मात्र नामों में भिन्नता है; लेकिन पूजा के विषय में नहीं। मात्र अज्ञानता के कारण ही विभिन्न धर्मावलम्बी आपस में झगड़ा करते हैं।

मूर्ति-नवीन आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए एक अवलम्बन

मूर्ति नवीन आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए एक सहारा है। यह आध्यात्मिक शैशवकाल में अवलम्बन है। प्रारम्भ में पूजा के लिए एक रूप या मूर्ति आवश्यक है, यह पूजा के लिए भगवान् का बाह्य प्रतीक है। यह ईश्वर का अंश है। स्थूल मूर्ति मानसिक भावों का आह्वान करती है। मन की स्थिरता मूर्तिपूजा से प्राप्त होती है। मूर्तिपूजक को अनन्तता, सर्वशक्तिमानता, सर्वज्ञता, शुद्धता, पूर्णता, मुक्तता, पवित्रता, सत्य और विश्वव्यापकता के भावों से सम्बद्ध होना चाहिए। सभी के लिए मन को परमात्मा अथवा अनन्त पर केन्द्रित करना सम्भव नहीं है। बृहत् जन-समूह को चित्त को एकाग्र करने के लिए एक स्थूल रूप आवश्यक होता हैं। ईश्वर को सर्वत्र देखना और सर्वत्र ईश्वर की उपस्थिति की साधना करना सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। आधुनिक मानव के लिए मूर्तिपूजा, पूजा का सरलतम रूप है।

मन को लगाने के लिए एक प्रतीक परम आवश्यक है। मन झुकने के लिए अवलम्बन चाहता है। प्रारम्भिक स्थितियों में इसमें परमात्मा की धारणा नहीं होती। प्रारम्भिक स्थितियों में बिना किसी बाह्य साधन की सहायता के मन केन्द्रित नहीं होता। आरम्भ में बिना किसी प्रतीक के एकाग्रता और ध्यान सम्भव नहीं है।

हर कोई मूर्तिपूजक है

वेदों में मूर्ति की पूजा का कोई विवरण नहीं मिलता। आगम और पुराणों दोनों में ही घरों तथा मन्दिरों में मूर्तिपूजा का विवरण दिया गया है। मूर्तिपूजा मात्र हिन्दुओं द्वारा नहीं की जाती। ईसाई क्रास की पूजा करते हैं। वे अपने मन में क्रास की परिकल्पना रखते हैं। मुसलमान जब नमाज अदा करते हैं, तो काबा का प्रतीक ध्यान में रखते हैं। कुछ योगियों और वेदान्तियों के सिवा सारे संसार के लोग मूर्तियों के पूजक हैं। वे कोई-न-कोई प्रतीक या परिकल्पना मन में रखते हैं।

मानसिक परिकल्पना भी मूर्ति का ही रूप है। इसमें अन्तर प्रकार का नहीं, वरन् अंशों का है। सभी पूजक चाहे वे प्रबुद्ध क्यों न हों, वे मन में एक रूप बना लेते और मन को उस परिकल्पना या प्रतीक पर लीन करने का प्रयास करते हैं।

हर एक व्यक्ति मूर्तिपूजक है। चित्र आदि भी मूर्ति के प्रकार मात्र हैं। मूढ़ मन को अवलम्बन हेतु एक स्थूल प्रतीक की तथा सूक्ष्म मन को एक अव्यावहारिक प्रतीक की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि वेदान्ती भी घुमक्कड़ मन को केन्द्रित करने के लिए ॐ का प्रतीक रखते हैं। मात्र पत्थर या लकड़ी की मूर्तियाँ या चित्र ही प्रतीक नहीं होते, वरन् तर्कशास्त्री या नेता भी प्रतीक बन जाते हैं। तो मूर्तिपूजा की निन्दा क्यों करें ?

ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम

मूर्तियाँ किसी मूर्तिकार की आदर्श कल्पनाएँ नहीं हैं, वरन् वे देदीप्यमान स्रोत हैं जिनसे भक्तों के हृदय ईश्वर की ओर आकृष्ट होते और भगवान् की ओर अविरल रूप से प्रवाहित होते हैं। जब मूर्ति की पूजा की जाती है, भक्त इसमें ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करता है और वह अपनी भक्ति इसमें उड़ेलता है। यह आधुनिक विषयी मनुष्य की घोर

अज्ञानता है जिसने उसकी दृष्टि को मेघाच्छन्न कर रखा है और जो उसे भगवान् के रूप की प्यारी और मन्त्रमुग्ध करने वाली मूर्तियों में देवत्व का दर्शन करने से रोकती है।

इस सदी की विज्ञान की प्रगति आपको मूर्तिपूजा के महत्त्व को प्रमाण सहित स्वीकार करने हेतु बाध्य कर देगी। गायक और भाषण देने वाले एक छोटे-से डिब्बे में जिसे हम रेडियो कहते हैं, कैसे बन्द रहते हैं? टेपरिकार्डर में से आप कैसे गीत सुनते हैं, शब्द जो जीवन रहित छोटे-छोटे यान्त्रिक निर्माण के रूप में यदि एक व्यवस्थित ढंग से चलाये जायें, तो हमें कैसे गाने, बातचीत आदि सुनायी देती है? वह भाषण जो विश्व में कहीं दिया गया हो, आप उसे हजारों मील दूर कैसे देख और सुन सकते हैं? जिस प्रकार आप रेडियो और टी.वी. की सहायता से लोगों के चित्र व आवाज सारे संसार में पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार मूर्ति के माध्यम से सर्वव्यापक ईश्वर के साथ सम्पर्क करना सम्भव है। प्रकृति के हर अणु में सर्वव्यापक ईश्वर की दिव्यता आवेशित है। एक बिन्दु-भर भी स्थान नहीं है जहाँ वह न हो। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि वह मूर्तियों में नहीं है?

बहुत से लोग ऐसे हैं जो व्यंग्यपूर्वक कहते हैं- 'अरे, ईश्वर सर्वव्यापक और निराकार है। वह इस मूर्ति में बन्द कैसे हो सकता है?" क्या वे लोग ईश्वर की सर्वव्यापकता के प्रति सदा चैतन्य हैं ? क्या वे सदा हर वस्तु में मात्र उन्हें ही देखते हैं? नहीं, यह उनका अहंकार हैं जो उन्हें भगवान् की मूर्ति के आगे झुकने से रोकती है और इसी कारण वे झूठे बहाने गढ़ते हैं।

रिक्त पात्र ही बहुत अधिक आवाज करता है। व्यावहारिक व्यक्ति जो ध्यान और पूजा करता है, जो ज्ञान और सच्ची भक्ति से पूर्ण है, वह सदा शान्त रहता है। वह अन्यों को शान्ति से शिक्षा देता और प्रभावित करता है। वही जानता है कि प्रारम्भ में एकाग्रता हेतु मूर्ति आवश्यक है या नहीं।

चाहे कोई प्रबुद्ध क्यों न हो, प्रारम्भ में बिना किसी प्रतीक के एकाग्रता का अभ्यास नहीं कर सकता। एक प्रबुद्ध और पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपने गर्व और दम्भ से कहता है- "मैं मूर्ति पसन्द नहीं करता। मैं किसी रूप पर ध्यान नहीं कर सकता।" वह निराकार पर भी ध्यान नहीं कर सकता। वह सोचता है कि यदि लोगों को मालूम हो जायेगा कि वह किसी रूप का ध्यान करता है, तो वे उस पर हँसेंगे। उसने कभी निराकार पर भी ध्यान नहीं किया है। वह बस बातें बनाता, तर्क करता और विशेष स्थिति में बैठता है। वह अनावश्यक वाद-विवाद में अपना जीवन व्यर्थ गँवा रहा है। "एक औंस अभ्यास टनों सिद्धान्तों से श्रेष्ठ है।" अधिकांश प्रबुद्ध व्यक्तियों में बुद्धि एक बाधा है। वे कहते हैं- "ब्रह्म का अस्तित्व कोरी कल्पना है। उच्च चेतना की स्थिति (समाधि) मन का वहम है और आत्म-साक्षात्कार वेदान्तियों की कल्पना।" ये भ्रमित आत्माएँ अज्ञानता में डूबी हुई हैं। वे अपने लौकिक ज्ञान में खिंचे चले जा रहे हैं जिनकी यदि आत्मज्ञान से तुलना की जाये, तो मात्र छिलका हैं। ऐसे लोगों की मुक्ति की कोई आशा नहीं है। सर्वप्रथम उनके कुसंस्कारों को सत्संग द्वारा दूर करना होगा। तभी वे अपनी गलतियों को पहचानेंगे। भगवान् उन्हें सद्बुद्धि तथा सही ज्ञान हेतु प्यास प्रदान करें!

ईश्वर का प्रतीक

प्रतिमा प्रतिनिधि या प्रतीक है। मन्दिर में मूर्ति चाहे पत्थर, लकड़ी अथवा धातु की बनी हो, क्योंकि वह भगवान् का चिह्न धारण किये है तथा यह उसका प्रतिनिधित्व करती है जो उसके लिए पवित्र तथा सनातन है; अतः वह भक्त के लिए बहुमूल्य है एक ध्वज एक रंगीन कपड़े का टुकड़ा मात्र है; लेकिन एक योद्धा के लिए अत्यन्त प्रिय है और वह इस ध्वज की रक्षा के लिए अपनी जान भी देने के लिए तैयार रहता है। इसी प्रकार मूर्ति भक्त के लिए अत्यन्त प्रिय है। यह उससे भक्ति की अपनी ही भाषा में बात करती है। जिस प्रकार ध्वज योद्धा में साहस का संचार करता है, उसी प्रकार मूर्ति भक्त में भक्ति का संचार करती है । भगवान् मूर्ति के भीतर अध्यारोपित होते हैं और मूर्ति साधक के भीतर दिव्य विचारों का सृजन करती है।

एक सादे अथवा रंगीन कागज का कोई मूल्य नहीं होता । आप इसे फेंक देते हैं। लेकिन यदि इस पर शासन की मुद्रा अंकित है (रुपये), तो आप इसे अपने बटुए अथवा तिजोरी में सुरक्षित रखते हैं, इसी प्रकार एक साधारण पत्थर का टुकड़ा आपके लिए कोई मूल्य नहीं रखता। आप इसे फेंक देते हैं। लेकिन यदि आप इसी पत्थर की मूर्ति भगवान् कृष्ण के रूप में पण्ढरपुर या अन्य किसी मन्दिर में देखते हैं, तो आप इसके आगे हाथ जोड़ कर सिर झुकाते हैं; क्योंकि इस पत्थर पर भगवान् की मुद्रा अंकित है। भक्त पत्थर की मूर्ति में ईश्वर और उनकी विभूतियों को अध्यारोपित करता है।

जब आप एक मूर्ति की पूजा करते हैं, तो आप यह नहीं कहते— "यह मूर्ति जयपुर से आयी है। यह प्रभुसिंह द्वारा लायी गयी है। इसका वजन ५० पौण्ड है। यह सफेद संगमरमर से बनी है। यह मुझे ५०० रुपये में मिली।" आप भगवान् के सभी गुणों का उसमें अध्यारोपण करके प्रार्थना करते हैं- "हे अन्तर्यामी ! आप सर्वव्यापक हैं, आप सर्वशक्तिमान्, सदा करुणामय और सर्वज्ञ हैं। आप सभी वस्तुओं का स्रोत हैं। आप नित्य और सनातन हैं। आप सच्चिदानन्द हैं। आप मेरे जीवन का जीवन, मेरी आत्मा की आत्मा हैं। मुझे प्रकाश और ज्ञान दें। अब मुझे सदा के लिए आप में ही लीन होने दे।" अब जब आपकी भक्ति और ध्यान गहन और प्रबल हो जाते हैं, तो आप मूर्ति में पत्थर नहीं देखते। आप वहाँ मात्र भगवान् के दर्शन करते हैं जो सदा चैतन्य है । मूर्तिपूजा प्रारम्भिक साधकों के लिए अत्यावश्यक है।

विराट् का सम्पूर्ण अंश

नव-साधक के लिए प्रतिमा परम आवश्यक है। मूर्ति की पूजा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। प्रतिमा पंचतत्त्वों से निर्मित होती है। पंचतत्त्व भगवान् का शरीर बनाते हैं। मूर्ति मूर्ति रहती है, पूजा भगवान् के पास जाती है।

यदि आप एक व्यक्ति से हाथ मिलाते हैं, वह बड़ा ही प्रसन्न होता है। आप उसके शरीर का छोटा-सा हिस्सा छूते हैं और वह बड़ा प्रसन्न होता है। वह मुस्करा कर आपका स्वागत करता है। इसी प्रकार भगवान् भी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, जब उनके विराट् (ब्रह्माण्ड) शरीर के छोटे से भाग की पूजा की जाती है। मूर्ति भगवान् के शरीर का छोटा-सा अंश है। यह सम्पूर्ण जगत् उनका शरीर है, अर्थात ब्रह्मांडीय रूप। भक्ति भगवान के पास जाती है. उपासक भगवान और उनके सभी गुणों को मूर्ति में स्थापित करता है। वह मूर्ति की सोलह गुना पूजा करता है - इसमें भगवान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए सोलह कृत्य किए जाते हैं। जैसे पद्यम (पैर धोना), अर्ध, आसन, स्नान, वस्त्र चढ़ाना, आचमन, चंदन-अभिषेक, अर्चना (फूल चढ़ाना), धूप जलाना, दीपक और कपूर जलाना, महानैवेद्यम आदि। पूजा का यह रूप इस भटकते मन को दूर ले जाता है। जिज्ञासु को धीरे-धीरे ईश्वर की निकटता का अनुभव होता है। वह हृदय की पवित्रता प्राप्त करता है और धीरे-धीरे अहंकार का उन्मूलक करता है।

उस पूजक के लिए जो प्रतीक में आस्था रखता है, किसी भी प्रकार का प्रतीक ईश्वर का शरीर है, चाहे वह पत्थर, मिट्टी, पीतल, चित्र, शालग्राम आदि किसी भी रूप में क्यों न हो। ऐसी पूजा कभी भी मूर्तिपूजा नहीं हो सकती। सभी पदार्थ ईश्वर की ही अभिव्यक्ति हैं। जिस वस्तु का अस्तित्व है, हर उस वस्तु में भगवान् उपस्थित हैं। हर वस्तु पूजा की वस्तु है। सभी में उस भगवान् की उपस्थिति है जिनकी उसमें पूजा की जा रही है। पूजा का हर कृत्य यह संकेत करता है कि पूजा की वस्तु श्रेष्ठ तथा चैतन्य है। भक्त के द्वारा सभी वस्तुओं को देखने का यही तरीका होना चाहिए। अपने अशिक्षित मन को उपरोक्त प्रकार से चीजों को देखने का प्रशिक्षण देना चाहिए।

मूर्तिपूजा से भक्ति का विकास होता है।

मूर्तिपूजा मन की एकाग्रता को सरल और सहज बनाती है। आप जिस विशेष अवतार के रूप में भगवान् को देखते हैं, उसकी महान् लीलाओं को अपने मानसिक चक्षुओं के सामने ला सकते हैं। यह आत्म-साक्षात्कार की सरलतम विधि है।

जिस प्रकार प्रसिद्ध योद्धा का चित्र आपके हृदय में पराक्रम जगाता है, उसी प्रकार भगवान् के चित्र को देखने से यह आपके मन को दिव्य ऊँचाइयों तक उठाता है। जैसे बच्ची अपनी गुड़िया की देखभाल, सेवा, दूध पिलाने के काल्पनिक कृत्यों के द्वारा भविष्य के मातृत्व भाव का विकास करती है, उसी प्रकार भक्त प्रतिमा की पूजा करके और उसका ध्यान करके भक्ति भाव का विकास करता है।

नियमित पूजा मूर्ति में स्थित देवत्व को अनावृत्त करती है

नियमित पूजा तथा पूजा की अन्य विधियाँ जो मूर्ति में दिव्यता को पहचानने की हमारी आन्तरिक भावना को बताती हैं, वे इसमें छिपे देवत्व को अनावृत्त करती हैं। यह वास्तव में एक आश्चर्य और चमत्कार है। चित्र सजीव हो उठता है। मूर्ति बोल पड़ती है। यह आपके प्रश्नों का उत्तर देती है और आपकी समस्याओं का समाधान करती है। आपमें स्थित भगवान् के पास मूर्ति में छिपे देवता को जागृत करने की शक्ति है। यह एक शक्तिशाली लैम की भाँति है जो मर्य की किरणों को रूई के बण्डल पर केन्द्रित करता है। न तो लैंस अग्नि है, और न रूई अग्नि है और न ही सूर्य की किरणें स्वयं रूई को जला सकती हैं। जब ये तीनों एक विशेष क्रम में एक-साथ लाये जाते हैं, तो अग्नि उत्पन्न होती है और रूई जल जाती है। ऐसा ही मूर्ति, साधक तथा सर्वव्यापक दिव्यता के विषय में भी है। पूजा मूर्ति को दिव्य ज्योति से देदीप्यमान बनाती है। मूर्ति वह लैंस है जो दिव्यता की किरणों को केन्द्रीभूत करता है और साधक को दिव्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर देता है। अब ईश्वर जो मूर्ति में स्थापित हैं, वे आपकी विशेष प्रकार से रक्षा करते हैं। मूर्ति चमत्कार करती हैं। वह स्थान जहाँ यह स्थापित है, तत्क्षण मन्दिर में ही नहीं, बल्कि वैकुण्ठ या कैलास में रूपान्तरित हो जाती है। जो ऐसे स्थान में रहते हैं, कष्टों से, रोगों से, असफलताओं से और संसार से भी स्वयं ही मुक्त हो जाते हैं। मूर्ति में जाग्रत देव एक देवदूत की तरह सभी को आशीर्वाद देते हैं और जो इसे नमन करते हैं, उनका कल्याण करते हैं ।

मूर्ति चेतना का पुंज

मूर्ति देवत्व का प्रतीक मात्र है। भक्त उसमें पत्थर, लकड़ी या धातु को नहीं देखता । यह उसके लिए भगवान् का प्रतीक है। वह मूर्ति में ईश्वर की उपस्थिति देखता है। दक्षिण भारत के सभी तिरसठ नयनार सन्तों ने शिवलिंग की पूजा करके ईश्वर का साक्षात्कार किया था। मूर्ति भक्त के लिए चेतना का पुंज है। वह मूर्ति से प्रेरणा प्राप्त करता है। मूर्ति उसका मार्गदर्शन करती है। उससे बातें करती है। यह उसकी विभिन्न प्रकार से सहायता करने के लिए मानव का रूप धारण कर लेती है। मदुरै के मन्दिर में स्थित शिवजी की मूर्ति ने एक लकड़हारे और वृद्धा स्त्री की मदद की थी। तिरुपति में स्थित मूर्ति ने मानव रूप धारण कर अपने भक्तों की सहायता के लिए न्यायालय में गवाही दी थी। कई ऐसे अद्भुत और रहस्यमय उदाहरण हैं और केवल भक्त ही उन्हें समझ सकते हैं।

जब मूर्तियाँ सजीव हो उठीं

भक्त और सन्त के लिए कोई भी वस्तु जड़ या निर्जीव नहीं है। हर वस्तु वासुदेव या चैतन्य' **'वासुदेवः सर्वं इति'** है । भक्त मूर्ति में वास्तव में ईश्वर के दर्शन करते हैं। एक राजा द्वारा नरसी मेहता को परीक्षण हेतु बुलाया। राजा ने कहा "हे नरसी, यदि तुम भगवान् कृष्ण के सच्चे भक्त हो और कहते हो कि यह मूर्ति स्वयं भगवान् कृष्ण है, तो इस मूर्ति को चला कर दिखाओ।" नरसी मेहता द्वारा प्रार्थना करने से मूर्ति चलने लगी। तुलसी दास द्वारा शिवजी की मूर्ति के सामने अर्पित भोग को पवित्र नन्दी ने ग्रहण किया। मूर्ति मीराबाई के साथ खेलती थी। यह उनके लिए जीवन और चेतना से पूर्ण थी ।

जब दक्षिण भारत स्थित तिरुपति के मन्दिर में अप्पय्या दीक्षितार गये, तो वैष्णवों ने उन्हें भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। अगले दिन प्रातः उन्होंने देखा कि विष्णु भगवान् की मूर्ति शिवमूर्ति में बदल गयी । महन्त को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह भौंचक्का रह गया और उसने अप्पय्या दीक्षितार से मूर्ति को पुनः विष्णु भगवान् की मूर्ति में बदलने की प्रार्थना की।

उडिपि में कनकदास भगवान् कृष्ण के महान् भक्त थे । यह स्थान दक्षिण भारत के दक्षिण कर्नाटक के एक जिले में स्थित है। वे नीची जाति के थे, इस कारण उनको मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं मिली। वे मन्दिर की परिक्रमा करने के लिए गये, वहाँ उन्होंने एक खिड़की मन्दिर के पीछे देखी। वे उस खिड़की के सामने बैठ गये और भगवान् कृष्ण के भजन गाने में सुध-बुध खो बैठे। उनका मधुर गान सुन कर बहुत से लोग उनको घेर कर खड़े हो गये। वे उनकी मीठी आवाज और भक्ति की गहराई देख कर उनकी ओर आकृष्ट हो गये। भगवान् कृष्ण भी पीछे की ओर घूम गये जिससे कनकदास भी उनके दर्शन कर सकें। पुजारी लोग आश्चर्य से गड़े रह गये। आज भी तीर्थयात्री उस खिड़की और उस स्थान के दर्शन करते हैं जहाँ कनकदास बैठ कर गा रहे थे।

मूर्ति भी भगवान् की ही भाँति है। इसके लिए जो देवता हैं, उनका मन्त्र अभिव्यक्ति का साधन है। मन्दिर में स्थित मूर्ति के प्रति भक्त का यही भाव होना चाहिए अर्थात् उसे यह अनुभव करना चाहिए जैसे भगवान् उसके सामने व्यक्ति के रूप में प्रकट हैं और उससे स्पष्ट स्वर में बात कर रहे हैं।

वेदान्त और मूर्तिपूजा

एक पक्का वेदान्ती मन्दिर में मूर्ति को नमन करने में लज्जा का अनुभव करता है। वह अनुभव करता है कि यदि वह स्वयं को झुकायेगा, तो उसका अद्वैत वाष्पीकृत हो जायेगा। प्रसिद्ध तमिल सन्तों अप्पार, सुन्दरार, सम्बधार आदि की जीवनी पढ़िए। उनको उच्च अद्वैतिक साक्षात्कार था। वे सर्वत्र भगवान् शिव का दर्शन करते थे और उन्होंने भगवान् शिव के सारे मन्दिरों के दर्शन किये, मूर्ति के सामने दण्डवत् किया और स्तुति की। उनके गाये भजन आज भी गाये जाते हैं। तिरसठ नयनार सन्तों ने भगवान् शिव की मूर्तियों की आत्मभाव से पूजा की और भगवत्-साक्षात्कार प्राप्त किया। वे मन्दिरों में झाडू लगाते, फूल चुनते, भगवान् के लिए माला बनाते और मन्दिर में दीप जलाते। वे अनपढ़ थे; लेकिन उन्होंने उच्च साक्षात्कार प्राप्त किया। वे व्यावहारिक सच्चे योगी थे। और उनके हृदय में सच्ची भक्ति थी। वे कर्मयोग की मूर्तिमत्ता थे । इन सभी ने सम्मिश्र योग की साधना की। मन्दिर की मूर्ति उनके लिए पूर्ण चैतन्य थी । यह मात्र पत्थर का टुकड़ा नहीं थी।

मधुसूदन स्वामी जो अद्वैतिक साक्षात्कार प्राप्त थे, जो आत्मा के साथ एकत्व का अनुभव करते थे, जिनका अद्वैतिक भाव था, वे भगवान् के हाथों में मुरली लिये हुए रूप से अत्यन्त प्रेम करते थे ।

तुलसी दास ने ईश्वर की सर्वव्यापकता का साक्षात्कार किया। उनको दिव्य चेतना थी। वे सर्वव्यापक ईश्वर के साथ वार्तालाप करते थे; लेकिन फिर भी भगवान् श्री राम के धनुर्धारी रूप को देखने की उनकी इच्छा थी। वृन्दावन में उन्होंने मुरली लिये कृष्ण को देखा, तो वे बोले-"मैं इस रूप के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा।" भगवान् उसी क्षण राम का रूप धारण कर उनके सामने आ गये और तभी तुलसीदास जी ने मस्तक झुकाया ।

तुकाराम जी का अनुभव भी तुलसी दास जी की तरह था। वे अपने अभंग में गाते थे – "मैं अपने भगवान् को उसी प्रकार सभी जगह देखता हूँ जैसे गन्ने में शक्कर सर्वत्र व्याप्त है।" फिर भी वे पण्ढरपुर में भगवान् विठ्ठल से जाँघों पर हाथ रख कर बातें करते थे। मीरा ने सर्वव्यापक कृष्ण से अपनी एकात्मकता का साक्षात्कार कर लिया था; लेकिन फिर भी यह गाते थकती नहीं थी- -**"मेरे तो गिरधर गोपाल "** ।

उपरोक्त तथ्यों से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि मूर्ति की पूजा द्वारा कोई भगवत्-साक्षात्कार कर सकता है, तथा यह कि भगवान् की सगुण रूप में पूजा वेदान्तिक साक्षात्कार के लिए भी बड़ी सहायक है और भगवान् के साक्षात्कार के लिए प्रारम्भ में ध्यान और एकाग्रता के लिए मूर्ति की पूजा अत्यन्त आवश्यक है और यह कि ऐसी पूजा दैवी चेतना की प्राप्ति में किसी भी प्रकार बाधक नहीं है और जो मूर्तिपूजा पर उग्रतापूर्वक प्रहार करते हैं, वे अज्ञानता के घोर अन्धकार में भटक रहे हैं और उन्हें पूजा और उपासना का सही ज्ञान नहीं है और वे स्वयं को विद्वान् बताने के लिए मूर्तिपूजा के विरुद्ध अनावश्यक विवादों और तर्कों में उलझे हुए हैं और उन्होंने कभी भी कोई सच्ची साधना नहीं की है। ये वही लोग हैं जो अपनी आदतों और व्यवसाय के बारे में बड़ी-बड़ी और आदर्श बातें बनाते हैं। वे स्वयं को भ्रमित कर रहे हैं। वे असंख्य लोगों के मनों को भी विचलित और भ्रमित करते हैं। सारा संसार मूर्तियों और प्रतीकों की किसी-न-किसी रूप में पूजा करता है।

प्रारम्भ में मन को किसी स्थूल विषय या प्रतीक पर केन्द्रित करने से यह अनुशासित होता है। जब यह स्थिर और सूक्ष्म हो जाता है, तो बाद में इसे किसी अव्यावहारिक विचार जैसे **'अहं ब्रह्मास्मि'** पर केन्द्रित किया जा सकता है। जब कोई ध्यान में आगे बढ़ जाता है, तो आकार निराकार में लीन होने लगता है और वह निराकार के साथ एक हो जाता है। मूर्ति या प्रतीक पूजा वेदान्त के दृष्टिकोण की विरोधी नहीं है। यह उसकी सहायक है।

वैधी भक्ति से परा भक्ति

भक्ति दो प्रकार की है—उच्च भक्ति या परा भक्ति और निम्न भक्ति। इसे वैधी या गौणी भक्ति कहते हैं। यह औपचारिक भक्ति है। वैधी भक्ति निम्न प्रकार की भक्ति है जो बाह्य साधनों पर निर्भर है। इससे मन शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इस पूजा के द्वारा जिज्ञासु भगवान् के प्रति प्रेम का धीरे-धीरे विकास करता है। वह इस पूजा में घण्टी बजाता है, प्रतीक या प्रतिमा की पूजा करता है। आरती करता है। पुष्प अर्पित करता है। चन्दन लगाता है। धूप-दीप जलाता है। भगवान् को नैवेद्य, भोग आदि अर्पित करता है।

मुख्य भक्ति या पराभक्ति उच्च प्रकार की भक्ति है। यह सभी सीमाओं को लाँघ जाती है। इस प्रकार का भक्त कोई नियम नहीं जानता । वह कोई बाह्य पूजा नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वर के दर्शन करता है। सभी वस्तुओं में ईश्वर को ही देखता है। उसका हृदय ईश्वर के प्रति प्रेम से परिपूर्ण रहता है। सारा संसार उसके लिए वृन्दावन है । उसकी स्थिति अवर्णनीय है। वह परमानन्द प्राप्त करता है। वह जहाँ भी जाता है प्रेम, पवित्रता और आनन्द विकीर्ण करता है और जो भी उसके सम्पर्क में आते हैं, उन सभी को प्रेरित करता है।

वह जिज्ञासु जो प्रारम्भ में मूर्ति की पूजा करता है, वह भगवान् को सर्वत्र देखता है और परा भक्ति का विकास करता है। वैधी भक्ति से उसे रागात्मिका अथवा प्रेमा भक्ति प्राप्त होती है। वह सारे संसार को भगवान् की भाँति देखता

है। अच्छे-बुरे, सही-गलत, धूर्त आदि के विचार समाप्त हो जाते हैं। वह धूर्त, डाकू, कोबरा, बिच्छू, चींटी, कुत्ते, पेड़, लकड़ी के लट्ठे, पत्थर के टुकड़े, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि में ईश्वर को देखता है। उसकी दृष्टि या अनुभव वर्णन से परे होते हैं। धन्य हैं ऐसे भक्त जो सच में ईश्वर ही हैं, जो लोगों को इस संसार के दलदल से उठाते हैं और उनकी मृत्यु के चंगुल से रक्षा करते हैं।

हिन्दुत्व जिज्ञासु को पार्थिव प्रतीक से मानसिक प्रतीकों की ओर प्रेरित करता है और इन विविध प्रकार की मानसिक परिकल्पनाओं को व्यक्तिगत ईश्वर की ओर, फिर व्यक्तिगत ईश्वर से अवैयक्तिक परमात्मा या निर्गुण ब्रह्म की ओर प्रेरित करता है।

हिन्दू दर्शन का महत्त्व

हिन्दू दर्शन और पूजा की हिन्दुओं की विधि कितनी उत्कृष्ट है ? यह मूर्ति की पूजा के साथ ही समाप्त नहीं होती। मूर्तिपूजा के द्वारा साधक भक्ति की उच्च स्थितियों की ओर, और समाधि या सम्पर्क की ओर शनैः-शनैः जाता है। हालांकि वह मूर्ति की पूजा करता है; परन्तु उसे अपने मानसिक चक्षुओं के सामने सर्वव्यापक ईश्वर को रखना चाहिए। उसे अपने हृदय और सभी चीजों में भी उनकी उपस्थिति का अनुभव करना चाहिए । यहाँ तक कि छोटी-सी मूर्ति की पूजा करते समय पुरुषसूक्त पढ़ना चाहिए और विराट् पुरुष जो असंख्य हाथों, अनगिनत आँखों, अनगिनत सिर वाले हैं, विश्व से परे जिनका विस्तार है, उनका तथा भगवान् या आत्मा जो सभी प्राणियों के हृदय में रहते हैं, उनका ध्यान करना चाहिए। वही मनुष्य जो मूर्ति के सामने धूप जलाता है, अगरबत्ती लगाता है, कर्पूर जलाता है, कहता है- "वहाँ न तो सूर्य चमकता है न चन्द्रमा, न ही तारे न ही विद्युत्, तो फिर थोड़ी अग्नि वहाँ कैसे चमक सकती है? सभी उनके बाद ही चमकती हैं। उनकी द्युति ही केवल सारे संसार को द्युतिमान करती है।" पूजा के नियम और विधि (वैधी भक्ति) और पूजा के रहस्य जो हिन्दू शास्त्रों में वर्णित हैं, वे वैज्ञानिक रूप से सही तथा उच्च न्यायसंगत हैं। जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया और जो भक्तों और महात्माओं के साथ सम्पर्क नहीं करते, वे अज्ञानी लोग ही मूर्तिपूजा की निन्दा करते हैं।

हर अन्य धर्म कुछ विशेष निश्चित मतों पर चलता है और लोगों को उसका अनुकरण करने के लिए बलपूर्वक प्रयास करता है। यह एक प्रकार की औषधि बहुत से रोगों के उपचार हेतु दी जाये, वैसा ही हुआ। यह सभी को सभी स्थितियों में एक ही प्रकार का भोजन प्रदान करता है। यह सभी अनुयायियों के सामने एक ही प्रकार का कोट रखता है जो अलबर्ट, अटकिंसन, अहलुवालिया, ऐंटोनी, अब्दुल रहमान —सबको आ जाना चाहिए। लेकिन हिन्दू जानते हैं कि मूर्तियों, क्रास आदि प्रारम्भ में एकाग्रता के लिए और मन को केन्द्रित करने के लिए विभिन्न प्रतीक हैं। ये बहुत-सी खूँटियाँ हैं, उनकी आध्यात्मिक धारणाओं और आस्थाओं को टाँगने के लिए। प्रतीक हर किसी के लिए आवश्यक नहीं है। यह हिन्दुत्व में सभी के लिए अनिवार्य भी नहीं है। यह उच्च योगी अथवा साधक हेतु आवश्यक नहीं है। प्रतीक एक स्लेट की तरह है जो पहली कक्षा के बच्चे के लिए उपयोगी है। जिनको इसकी आवश्यकता नहीं, उनको यह कहने का अधिकार नहीं है कि यह गलत है। यदि वे यह कहते हैं कि यह गलत है, तो वे अपनी अज्ञानता प्रकट कर रहे हैं।

उपसंहार

प्रारम्भ में मूर्ति की पूजा करने में गलत कुछ भी नहीं है। आपको मूर्ति में भगवान् और उनके गुणों का अध्यारोपण करना चाहिए। आपको उस अन्तरात्मा के बारे में अवश्य सोचना चाहिए जो मूर्ति में छिपी हुई है। जिज्ञासु शनैः-शनैः यह अनुभव करने लगता है कि वह मूर्ति में जिस भगवान् की पूजा करता है, वह विश्व के सभी प्राणियों के हृदय में तथा सभी नाम-रूपों में स्थित है। वह ईश्वर की उपस्थिति का सर्वत्र अनुभव करने लगता है।

मूर्तिपूजा धर्म का आरम्भ है। निश्चय ही यह अन्त नहीं। वहीं हिन्दू धर्म शास्त्र जो प्रारम्भिक साधकों को मूर्तिपूजा करने हेतु निर्देश देते हैं, वही उच्च साधकों को अनन्त या परमात्मा का ध्यान करने, महावाक्य **'तत् त्वम् असि'** के महत्त्व का ध्यान करने हेतु कहते हैं।

पूजा के विभिन्न स्तर हैं। सबसे पहला है मूर्तियों की पूजा, अगला है मन्त्र-जप और प्रार्थना । मानसिक पूजा, पुष्पों से पूजा करने से अधिक श्रेष्ठ है। परमात्मा या निर्गुण ब्रह्म पर ध्यान सर्वश्रेष्ठ है।

परम स्थिति है आत्म-साक्षात्कार अथवा ब्रह्म-साक्षात्कार । द्वितीय श्रेणी है ध्यान। योगी साधना या परमात्मा पर निरन्तर ध्यान करता है। तृतीय है प्रतीक पूजा। चतुर्थ है धार्मिक कर्मकाण्ड करना तथा पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा। शास्त्र और गुरु दयालु माताएँ हैं। वे जिज्ञासुओं का हाथ पकड़ कर शनैः-शनैः एक स्तर से दूसरे स्तर तक तब तक ले कर चलती हैं, जब तक वे निर्विकल्प समाधि या उच्च चेतना स्थिति में स्थापित नहीं हो जाते। वे नवीन जिज्ञासुओं के लिए साधना के बहुत से प्रकार बताते हैं और उच्च साधकों के लिए जो कि पवित्र, सूक्ष्म व तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त हैं, असम्बद्ध या अव्यावहारिक ध्यान की विधि बताते हैं।

सभी विकास की स्थितियाँ हैं। मानव आत्मा अपनी सामर्थ्य, विकास की स्थिति के अनुसार अनन्त या परमात्मा को ग्रहण करने और साक्षात्कार करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास करती है। वह उच्च और उच्च होती जाती है और अधिकाधिक बल प्राप्त करती है और परमात्मा में स्वयं को विलीन करके एकात्मकता प्राप्त कर लेती है।

हिन्दू ऋषियों और हिन्दू शास्त्रों को धन्यवाद जो जिज्ञासु को पूजा के निम्न से उच्च रूप तक ले कर जाते हैं। वे उसकी निर्गुण, सर्वव्यापक, निराकार, ब्रह्म अनन्त और उपनिषदों के पूर्ण ब्रह्म में विश्राम करने में सहायता करते हैं।

ईश्वर की प्रिय सन्तानो! अपने अज्ञानतापूर्ण अविश्वास को इसी क्षण त्याग दें। इसी क्षण से अपने हृदय में परम दृढ़ आस्था को बसायें। अपने मन को श्री मीरा, श्री रामकृष्ण परमहंस और दक्षिण भारत के आलवार और नयनार सन्तों के महिमामय उदाहरणों की स्मृति दिलायें। उन्होंने विश्वास किया, उन्होंने समृद्ध आध्यात्मिक फल को प्राप्त किया। यदि आपकी मूर्तिपूजा में ऐसी आस्था है, तो आप भी महान् शान्ति, प्रसन्नता और समृद्धि का यहाँ आनन्द ले सकते हैं तथा उन्हें यहीं अभी प्राप्त कर सकते हैं।

चाहे आप नियमित समयावधि के बाद बाह्य पूजा करते हों; परन्तु अपने हृदय के भीतर ईश्वर की आन्तरिक पूजा को अखण्ड रूप से चलने दें। तब पूजा पूर्णता को प्राप्त करती है। जीवन एक दिव्य आराधना है। आप दैनिक जीवन में विराट् की विश्व-पूजा का महत्त्व जानें और इसको करके जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करें। ईश्वर की कृपा आप सब पर सदा बनी रहे !

मन्दिर

भगवान् का मन्दिर इस कलियुग और दिन-प्रतिदिन के जीवन के व्यस्त भौतिक संसार में ध्यान और भक्ति द्वारा मनुष्य के विकास हेतु महान् अवसर उपलब्ध कराता है। मन्दिर का परिसर इतना पवित्र होता है और शान्ति प्रदान करता है जो और किसी वातावरण में नहीं मिल सकती। सम्पूर्ण क्षेत्र में दिव्य तरंगें होती हैं। दिन के तीनों कालों में नियमित पूजा, वेदों के पवित्र विशेष मन्त्रों के उच्चारण से मन्दिर का मंगलकारी वातावरण दिन-प्रतिदिन श्रेष्ठ और श्रेष्ठ होता जाता है और यह मानव की आत्मा को बहुत ऊपर उठा देता है।

वह मन्दिर जहाँ परमेश्वर की प्रतिमा स्थापित है, वह एक पवित्र स्थान है और यह एक शक्तिशाली आध्यात्मिक प्रभाव फैलाता है जो लोगों के मनों को उच्चतम पवित्रता की स्थिति में रूपान्तरित कर देता है। प्रार्थना, जागरण, अभिषेक और अर्चना के द्वारा मन्दिर में जो नित्य पूजा की जाती है, वह सारे वातावरण को पवित्रता तथा वैभव से युक्त कर देती है और जब मन्दिर में प्रवेश करते हैं, तो यह सबके मन में पूज्य भाव, करुणा और भक्ति की भावना उत्पन्न करती है। लेकिन मन्दिर में देवता की पूजा के लिए जो नियम हैं, उनका पालन, आन्तरिक और बाह्य दोनों पवित्रता बनाये रखना अत्यावश्यक है। मन्दिर की पवित्रता का सावधानीपूर्वक ध्यान रखना आवश्यक है।

मन्दिर भगवान् के अर्चावतार को समर्पित होता है और यह विराट् पुरुष के शरीर का दृश्यमान प्रस्तुतिकरण है और मन्दिर में किये जाने वाले पूजा के कृत्य आध्यात्मिक साधना की सम्पूर्ण विधि को व्यक्त करने की वास्तविक क्रियाएँ हैं। जिस अन्तर्यामी ईश्वर की मन्दिर में पूजा की जाती है, जिसने इस ब्रह्माण्ड को व्याप्त किया है, मन्दिर उसी ईश्वर का लघु प्रतिरूप है। श्रुतियों के, स्मृतियों और तन्त्रों के शक्तिशाली मन्त्रों द्वारा भगवान् का आह्वान किया जाता है और मन्दिर में मूर्ति देवत्व की शक्ति का प्रकट स्वरूप बन जाती है और यह समर्पित अर्चक की योग्य जिज्ञासा को पूर्ण करने में समर्थ होती है।

सर्वशक्तिमान् के प्रति प्रेम के विकास हेतु अर्चना सरलतम और सुरक्षित साधन है। इसके लिए यह ईश्वर और संसार के मध्य एक सेतु का कार्य करती है।

अर्चना भक्ति की यह विशेषता है कि यह भक्तिपूर्वक अर्पित किये जाने वाले भौतिक साधनों (जो कि ईश्वर का ही प्रकट रूप हैं) के द्वारा मनुष्य में धार्मिक चेतना के सूक्ष्म रूपों का आह्वान करने का प्रयास करती है। अर्थात् अर्चना वह नींव है जिस पर आध्यात्मिक प्रयत्न और साक्षात्कार का भव्य प्रासाद खड़ा होता है।

भगवान् की पूजा प्रबल आस्था और लालसा के साथ करें। भगवान् अवश्य ही आप पर कृपा करेंगे। वे सभी धन्य हैं जिनके कारण मन्दिर बना, जिन्होंने मन्दिर का निर्माण किया, जिन्होंने इसमें सहायता की, जो इसमें पूजा करते हैं, जो स्वयं इसके सामने आस्था से नमन करते हैं तथा इसमें स्थित ईश्वर को लगन और प्रेम से सजाते हैं। भगवान् सर्वत्र हैं और वे सभी प्राणियों के प्रति अपनी करुणा के कारण विशेष स्थानों में स्वयं की पूजा करने की अनुमति प्रदान करते हैं।

प्रसाद की महिमा

प्रसाद वह है जो शान्ति प्रदान करे। कीर्तन, पूजा, हवन और आरती में भगवान् को बादाम, किशमिश, दूध, मिठाइयाँ और फल आदि अर्पित किये जाते हैं, वे भगवान् को अर्पित करने के पश्चात् घर के सदस्यों या मन्दिर में भक्तों के मध्य वितरित कर दिये जाते हैं। बिल्व-पत्र, पुष्प, तुलसी, विभूति आदि से पूजा की जाती है और बाद में इन्हें प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया जाता है। भस्म भगवान् शिव का प्रसाद है। यह मस्तक पर लगायी जाती है। और थोड़ी खायी जाती है। कुंकुम श्री देवी या शक्ति का प्रसाद है। इसे दोनों भौंहों के मध्य (आज्ञा या भ्रूमध्य) में लगाते हैं। तुलसी भगवान् विष्णु, राम या कृष्ण का प्रसाद है। इसे खाते हैं। ये सभी पूजा और हवन के समय बोले जाने वाले मन्त्रों से गुप्त शक्तियों से आवेशित हो जाते हैं ।

भोग अर्पित करने वाले भक्त का भगवान् के प्रति जो मानसिक भाव होता है, उसका सर्वाधिक प्रभाव होता है। यदि कोई लगनशील ईश्वर का भक्त भगवान् को कुछ अर्पित करे और वह प्रसाद लिया जाये, तो यह नास्तिक लोगों के मन पर भी बड़ा ही प्रभाव डालता है और उन्हें परिवर्तित कर देता है। प्रसाद से भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। नारद का चरित्र पढ़िए। आप भगवान् के प्रसाद तथा उच्च साधकों और सन्तों की महानता को जान जायेंगे।

यदि सच्चे हृदय से भगवान् को भोग अर्पित किया जाये, तो भगवान् मानव-रूप धारण कर उसे ग्रहण करते हैं। नामदेव ने भगवान् को चावल आदि का भोग लगाया और प्रभु ने नामदेव के साथ ही उसे ग्रहण भी किया। अन्य स्थितियों में प्रभु अर्पित भोज्य पदार्थों के सूक्ष्म सार को ग्रहण करते हैं और बचा हुआ भोजन प्रसाद होता है। जब महात्माओं और निर्धनों को भोजन कराया जाता है, तो शेष बचे भोजन को प्रसाद की भाँति लिया जाता है। जब यज्ञ किया जाता है, तो इसमें भाग लेने वाले प्रसाद को आपस में बाँट लेते हैं। यह भगवान् का आशीर्वाद प्रदान करता है। जब राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि (पुत्र की कामना से) यज्ञ कराया, तो अग्नि भगवान् ने उन्हें खीर से भरा एक पात्र प्रसाद रूप में दिया, जिसे राजा ने अपनी रानियों को दे दिया। इसे ग्रहण करने के बाद वे गर्भवती हो गयीं (बाद में उन्हें श्री राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न पुत्र-रूप में प्राप्त हुए)। प्रसाद भक्त के लिए अत्यन्त पवित्र वस्तु होता है। प्रसाद ग्रहण करने में समय, स्थान और स्थिति का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रसाद सदा शुद्ध करने वाला है।

प्रसाद और चरणामृत से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन करना सम्भव नहीं है। उनमें मनुष्य के जीवन के प्रति दृष्टिकोण को पूर्णतया परिवर्तित करने की सामर्थ्य होती है। प्रसाद और चरणामृत में रोग मुक्ति तथा यहाँ तक कि मृत व्यक्ति को जीवन प्रदान करने की सामर्थ्य होती है। हमारी पवित्र भूमि में पूर्व-काल में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं जो प्रसाद की शक्ति और प्रभाव की साक्षी हैं। प्रसाद समस्त दुःखों और पापों का नाश करता है। यह कष्टों, दर्द और 'चिन्ता की अचूक औषधि है। इस वाक्य की प्रामाणिकता के परीक्षण हेतु पूर्ण आस्था का होना सबसे अधिक आवश्यक है। आस्थाविहीन लोगों में इसका अत्यन्त कम प्रभाव होता है।

जो आधुनिक शिक्षा और संस्कृति में पले-बढ़े हैं, वे प्रसाद की महिमा को विस्मृत कर बैठे हैं। बहुत से अँगरेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति उस प्रसाद का महत्त्व भी नहीं समझते जो उन्हें किसी महात्मा से प्राप्त होता है। यह गम्भीर भूल है। प्रसाद महान् शुद्धिकारक है। चूँकि वे पश्चिमी लोगों की भाँति जीवन जीते हैं और वे पश्चिमी लोगों के भावों का अनुकरण करते हैं, इस कारण वे प्राचीन काल के ऋषियों की सच्ची सन्तानों के स्वभाव को भूल गये हैं। एक सप्ताह तक वृन्दावन या अयोध्या या वाराणसी अथवा पण्ढरपुर में निवास कीजिए, आप प्रसाद के महत्त्व और अद्भुत प्रभावों को पहचान लेंगे। प्रसाद से बहुत से असाध्य रोग ठीक हो गये। बहुत से लगनशील भक्तों को प्रसाद मात्र से आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए। प्रसाद रामबाण औषधि है। प्रसाद आध्यात्मिक रसायन है। प्रसाद भगवान् की कृपा है। प्रसाद सबकी औषधि है। प्रसाद शक्ति का साकार रूप है। प्रसाद प्रकट रूप में में रोग मुक्ति तथा यहाँ तक कि मृत व्यक्ति को जीवन प्रदान करने की सामर्थ्य होती है। हमारी पवित्र भूमि में पूर्व- -काल में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं जो प्रसाद की शक्ति और प्रभाव की साक्षी हैं। प्रसाद समस्त दुःखों और पापों का नाश करता है। यह कष्टों, दर्द और चिन्ता की अचूक औषधि है। इस वाक्य की प्रामाणिकता के परीक्षण हेतु पूर्ण आस्था का होना सबसे अधिक आवश्यक है। आस्थाविहीन लोगों में इसका अत्यन्त कम प्रभाव होता है।

जो आधुनिक शिक्षा और संस्कृति में पले-बढ़े हैं, वे प्रसाद की महिमा को विस्मृत कर बैठे हैं। बहुत से अँगरेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति उस प्रसाद का महत्त्व भी नहीं समझते जो उन्हें किसी महात्मा से प्राप्त होता है। यह गम्भीर भूल है। प्रसाद महान् शुद्धिकारक है। चूँकि वे पश्चिमी लोगों की भाँति जीवन जीते हैं और वे पश्चिमी लोगों के भावों का अनुकरण करते हैं, इस कारण वे प्राचीन काल के ऋषियों की सच्ची सन्तानों के स्वभाव को भूल गये हैं। एक सप्ताह तक वृन्दावन या अयोध्या या वाराणसी अथवा पण्ढरपुर में निवास कीजिए, आप प्रसाद के महत्त्व और अद्भुत प्रभावों को पहचान लेंगे। प्रसाद से बहुत से असाध्य रोग ठीक हो गये। बहुत से लगनशील भक्तों को प्रसाद मात्र से आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए। प्रसाद रामबाण औषधि है। प्रसाद आध्यात्मिक रसायन है। प्रसाद भगवान् की कृपा है। प्रसाद सबकी औषधि है। प्रसाद शक्ति का साकार रूप है। प्रसाद प्रकट रूप में देवत्व है। प्रसाद शक्ति का संचार करता, प्राण डाल देता है, स्फूर्ति प्रदान करता है और भक्ति अनुप्राणित करता है।

प्रसाद सभी को उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति और समृद्धि प्रदान करता है। प्रसाद की महिमा महान् है जो शान्ति और आनन्द का दाता है। धन्य हैं प्रसाद के भगवान् जो अमरता और स्थायी आनन्द के दाता हैं।

हिन्दू प्रतीकों का दर्शन

पूजा करते समय घण्टियाँ इसलिए बजायी जाती हैं जिससे बाह्य ध्वनियाँ न सुनायी पड़ें और मन अन्तर्मुखी तथा एकाग्र हो सके।

देवता के सामने जलायी जाने वाली ज्योति यह बताती है कि ईश्वर ज्योतिस्वरूप है। वह प्रकाश ही है। भक्त कहता है—"हे भगवान्! आप ब्रह्माण्ड की स्व-प्रकाश्य ज्योति हैं। आप ही सूर्य, चन्द्र और अग्नि को प्रकाशित करते हैं। मेरी बुद्धि को भी प्रकाशित करें।" यही ज्योति जलाने का महत्त्व है।

धूप देवता के सामने जलायी जाती है। इसका धुआँ सारे कमरे में फैल जाता है। यह एक रोगाणुमुक्त करने की क्रिया है। धूप जलाना इस बात का संकेत करता है कि भगवान् सर्वव्यापक हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उनकी उपस्थिति है। भक्त धूप जला कर ईश्वर से कहता है—"हे भगवान्! मुझमें छिपी वासनाएँ और संस्कार इस धूप के धुएँ की भाँति जल कर राख हो जायें और आप मुझे निर्दोष बना दें।"

कर्पूर जलाना इस बात का द्योतक है कि व्यक्ति का अहंकार कर्पूर की भाँति पिघले और जीवात्मा ज्योतियों की परम ज्योति के साथ एक हो जाये।

चन्दन का घिसना भक्त को यह स्मरण कराता है कि उसे परेशानियों में चन्दन की भाँति धैर्यवान् होना चाहिए। जैसे चन्दन जब उसे पीसा जाता है, तो भी मधुर सुगन्ध विकिरित करता है, वैसे ही भक्त को कठिनाइयाँ आने पर बड़बड़ाने या दुःखी होने के विपरीत उसे चन्दन की भाँति मधुरता और सज्जनता का विकिरण करना चाहिए। इससे एक और भी शिक्षा मिलती है चन्दन को काटा या पीसा जाता है, तो भी वह शान्तिपूर्वक मधुर सुगन्धि फैलाता है। उसी प्रकार किसी को भी अपने शत्रु का भी बुरा नहीं सोचना चाहिए।

शिवलिंग

आजकल एक प्रचलित धारणा है कि शिवलिंग जननेन्द्रिय या प्रकृति की मुख्य जनन-शक्ति का प्रतीक है। यह एक गम्भीर भूल ही नहीं, वरन् चिन्ताजनक भयंकर भूल है। पूर्व वैदिक काल में भगवान् शिव की उत्पादन-शक्ति का प्रतीक लिंग बन गया था। लिंग एक विभेदक चिह्न है। निश्चय ही यह कामुक प्रतीक नहीं। आप लिंगपुराण में पढ़ेंगे-

"प्रधानं प्रकृति यदहर्लिंगमुत्तमम्,
गन्धवर्णरसैहीनम् शब्द-स्पर्शादिवर्जितम् ॥"

आदि लिंग सुगन्ध, वर्ण, स्वाद, श्रवण, स्पर्श आदि से रहित है। उसे प्रकृति कहा गया है।

लिंग का अर्थ संस्कृत में चिह्न है। यह एक प्रतीक है जो एक अनुमान की ओर संकेत करता है। जब आप नदी में बाढ़ देखते हैं, तो आप अनुमान लगाते हैं कि अवश्य पिछले दिन तेज वर्षा हुई होगी। जब आप धुआँ देखते हैं, तो अनुमान करते हैं कि अवश्य ही वहाँ अग्नि होगी। अनगिनत रूपों से भरा यह बृहत् संसार सर्वशक्तिमान् भगवान् का लिंग है। शिवलिंग भगवान् शिव का प्रतीक है। जब आप लिंग के दर्शन करते हैं, तो आपका मन तत्काल ऊपर उठ जाता है। आप भगवान् के बारे में विचार करने लगते हैं।

भगवान् शिव वास्तव में निराकार हैं। उनका कोई रूप नहीं हैं, फिर भी सभी उनके ही रूप हैं। सभी रूप भगवान् शिव द्वारा व्याप्त किये हुए हैं। हर रूप भगवान् शिव का रूप या लिंग है।

लिंग में मन की एकाग्रता को प्रेरित करने हेतु अत्यन्त रहस्यमय शक्ति है। जिस प्रकार एक स्फटिक के गोले को देखने से मन शीघ्र एकाग्र हो जाता है, उसी प्रकार शिवलिंग को देखने पर भी मन शीघ्र केन्द्रित हो जाता है। इसी कारण भारत के प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने भगवान् शिव के मन्दिरों में लिंग स्थापित करने का निर्धारण किया।

शिवलिंग मौन की भाषा में स्पष्ट कहता है—"मैं सदा एक हूँ। मैं निराकार हूँ।" शुद्ध और पवित्र आत्माएँ इस भाषा को समझ सकती हैं। एक अल्प बुद्धि या अल्प ज्ञानी विदेशी जो कि लोलुप, कामुक व अशुद्ध है, व्यंग्यपूर्वक कहेगा – "ये हिन्दू पुरुष की जननेन्द्रिय की पूजा करते हैं। ऐसे लोग अज्ञानी हैं और उनके पास कोई दर्शन नहीं है।" जब कोई विदेशी तमिल या अन्य कोई भारतीय भाषा सीखता है, तो वह सर्वप्रथम कुछ अपशब्द ही सीखने का प्रयास करता है। यह उसके जिज्ञासु स्वभाव के कारण होता है। इसी तरह ये जिज्ञासु विदेशी मूर्तिपूजा में भी कुछ दोष ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। वास्तव में लिंग निराकार सत्ता का बाह्य • प्रतीक मात्र है। भगवान् शिव जो अविभाज्य, सर्वव्यापक, अनन्त, मंगलमय, सदा पवित्र, मंगलकारी और इस ब्रह्माण्ड के अमर तत्त्व हैं, वे आपके हृदय में विराजित अमर आत्मा हैं। वे आपके अन्तर्यामी अन्तरात्मा हैं और वे परब्रह्म के समरूप हैं।

स्फटिक लिंग भी भगवान् शिव का प्रतीक है। यह भी भगवान् शिव की आराधना और पूजा हेतु प्रयुक्त होता है। यह स्फटिक से बना होता है। इसका अपना कोई रंग नहीं होता; लेकिन यह अपने सम्पर्क में आने वाले पदार्थों के रंग को ग्रहण कर लेता है। यह निर्गुण ब्रह्म अथवा निर्गुण परमात्मा या निराकार निर्गुण शिव का प्रतिनिधित्व करता है।

एक सच्चे भक्त के लिए लिंग एक पत्थर का टुकड़ा नहीं है। यह पूर्ण चैतन्य है। लिंग उससे बातें करता और उसे अश्रु बहाने हेतु विवश कर देता है। यह रोमांच उत्पन्न करता है और हृदय को पिघला देता है। उसे शरीर की चेतना से ऊपर उठा देता है और ईश्वर के साथ एक होने में तथा निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने में उसकी सहायता करता है।

भगवान् राम ने रामेश्वर में शिवलिंग की पूजा की। रावण महान् विद्वान् था। उसने स्वर्णलिंग की आराधना की। लिंग में कितनी रहस्यमय शक्ति है!

वह लिंग जो नवीन साधकों के मन को एकाग्र करने हेतु अवलम्बन है तथा भगवान् शिव का प्रतीक है, उसकी पूजा द्वारा आप सब निराकार शिव को प्राप्त करें!

आस्था और मूर्तिपूजा

एक व्यक्ति था पूरण चन्द। उसके गुरु ने उसे नारायण-मन्त्र की दीक्षा दी और पूजा के लिए नारायण भगवान् की छोटी-सी मूर्ति दी। पूरण अपनी पूजा में बड़ा ही नियमित था और वह मन्त्र-जप में भी कभी चूक नहीं करता था। लेकिन काफी समय बाद भी उसे मूर्ति द्वारा आशीर्वाद देने का कोई लक्षण नहीं दिखायी दिया। इस कारण वह अपने गुरु के पास इसका कारण पूछने के लिए गया। गुरुजी मुस्कराये और पूरण से बोले- 'अच्छा पुत्र, ऐसा करो, मैं तुम्हें यह भगवान् शिव की मूर्ति देता हूँ और शिव-मन्त्र की दीक्षा देता हूँ। तुम भगवान् शिव की पूजा आस्था और भक्ति के साथ करना। शिवजी को भोलानाथ भी कहते हैं और वे सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं। वे शीघ्र ही तुम्हें आशीर्वाद देंगे।'

अगले छह माह तक पूरण चन्द भगवान् शिव की 'पूजा और जप में लगा रहा। भगवान् नारायण की मूर्ति पूजा के कमरे में धूल-भरी आल्मारी में पड़ी हुई थी। कई महीनों बाद पूरण अपने गुरु के पास गया और उनसे प्रार्थना की कि वे उसे उस देवता की मूर्ति और मन्त्र दें जो उसे वरदान दे।

गुरुजी पुनः मुस्कराये। वे समझ गये कि अब उसे ज्ञान देने का समय आ गया है और उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि शिष्य अनुभव से सीखेगा। इस कारण वे बोले – "मेरे अच्छे बच्चे, इस युग में माँ काली प्रत्यक्ष देवता हैं, उनकी इस मूर्ति की पूजा करो। तुम्हें और उनके मन्त्र का जप करो। तुम्हें उनका आशीर्वाद अवश्य ही मिलेगा।" इस समय पूरण ने कोई भी प्रश्न नहीं किया; उसे पूर्ण विश्वास था।

अब काली माँ की पूजा प्रारम्भ हो गयी। शिवजी को उठा कर नारायण भगवान् के पास आल्मारी में ऊपर रख दिया गया। पूरण माँ काली की प्रतिमा के सामने धूप जलाने लगा जिसका धुआँ उठ कर ऊपर आल्मारी में रखी दोनों मूर्तियों के पास जाने लगा। यह देख कर पूरण क्रोधित हो उठा कि माँ काली के लिए जलायी धूप को सूँघने का भगवान् शिव को क्या अधिकार है ? क्योंकि जब वह इनकी पूजा करता था, तो वे प्रसन्न नहीं हुए और वह उनकी पूजा करते-

करते निराश हो गया था। आज तो उसने माँ काली के लिए धूप जलायी है। और उसने गुस्से में आ कर भगवान् शिव की मूर्ति उठा ली और उसकी नाक में रूई डाल कर उसे बन्द करने लगा, ताकि वे धूप को न सूँघ सकें। परन्तु उसी समय मूर्ति अदृश्य हो गयी और भोलेनाथ मुस्कराते हुए उसके सामने खड़े थे। पूरण को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उनके चरणों में गिर पड़ा। प्रभु पूरण से वरदान माँगने के लिए कह रहे थे— "वत्स, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो।"

पूरण बोला- "प्रभु! जब मैं आपकी लगन पूजा और मन्त्र जप करता था, तब आप मुझे वरदान देने नहीं आये; लेकिन जब मैंने आपकी पूजा छोड़ दी, तो आप मेरे सामने क्यों प्रकट हुए? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इसका क्या रहस्य है? मुझे कृपा कर बतायें।"

भगवान् बोले- "मेरे बच्चे, इसमें रंचमात्र भी रहस्य नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि जब तुम मुझे मात्र एक मूर्ति मानते थे और अपने मन की लहर के हिसाब से मुझे जब चाहे तब फेंक सकते थे, तो मैं तुम्हारे सामने भला कैसे प्रकट होता । परन्तु आज तुमने मेरे साथ सजीव मूर्ति की भाँति व्यवहार किया और तुम मेरी नाक को रूई से बन्द करने लगे, जिससे कि मैं तुम्हारे सामने आने से स्वयं को न रोक सका।"

भावावेश में पूरण चन्द कुछ न कह सका और एक बार पुनः भगवान् को प्रणाम करने लगा और प्रभु के प्रेम में लीन हो गया। उसने प्रभु से कोई बड़ा वरदान नहीं माँगा। प्रभु के प्रेम में ही उसने सब-कुछ पा लिया।

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

८ सितम्बर, १८८७ को सन्त अप्पय्य दीक्षितार तथा अन्य अनेक ख्याति-प्राप्त विद्वानों के सुप्रसिद्ध परिवार में जन्म लेने वाले श्री स्वामी शिवानन्द जी में वेदान्त के अध्ययन एवं अभ्यास के लिए समर्पित जीवन जीने की तो स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रवृत्ति थी ही, इसके साथ-साथ सबकी सेवा करने की उत्कण्ठा तथा समस्त मानव-जाति से एकत्व की भावना उनमें सहजात ही थी।

सेवा के प्रति तीव्र रुचि ने उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र की ओर उन्मुख कर दिया और जहाँ उनकी सेवा की सर्वाधिक आवश्यकता थी, उस ओर शीघ्र ही वे अभिमुख हो गये। मलाया ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। इससे पूर्व वह एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, जिसमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओं पर विस्तृत रूप से लिखा करते थे। उन्होंने पाया कि लोगों को सही जानकारी की अत्यधिक आवश्यकता है, अतः सही जानकारी देना उनका लक्ष्य ही बन गया।

यह एक दैवी विधान एवं मानव-जाति पर भगवान् की कृपा ही थी कि देह-मन के इस चिकित्सक ने अपनी जीविका का त्याग करके, मानव की आत्मा के उपचारक होने के लिए त्यागमय जीवन को अपना लिया। १९२४ में वह ऋषिकेश में बस गये, यहाँ कठोर तपस्या की और एक महान् योगी, सन्त, मनीषी एवं जीवन्मुक्त महात्मा के रूप में उद्भासित हुए।

१९३२ में स्वामी शिवानन्द जी ने 'शिवानन्द आश्रम' की स्थापना की; १९३६ में 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी' का जन्म हुआ; १९४८ में 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी' का शुभारम्भ किया। लोगों को योग और वेदान्त में प्रशिक्षित करना तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना इनका लक्ष्य था। १९५० में स्वामी जी ने भारत और लंका का द्रुत-भ्रमण किया। १९५३ में स्वामी जी ने 'वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स' (विश्व धर्म सम्मेलन) आयोजित किया। स्वामी जी ३०० से अधिक ग्रन्थों के रचयिता हैं तथा समस्त विश्व में विभिन्न धर्मों, जातियों और मतों के लोग उनके शिष्य हैं। स्वामी जी की कृतियों का अध्ययन करना परम ज्ञान के स्रोत का पान करना है। १४ जुलाई, १९६३ को स्वामी जी महासमाधि में लीन हो गये।

A DIVINE LIFE SOCIETY PUBLICATION

HS 9 ₹ 30/-